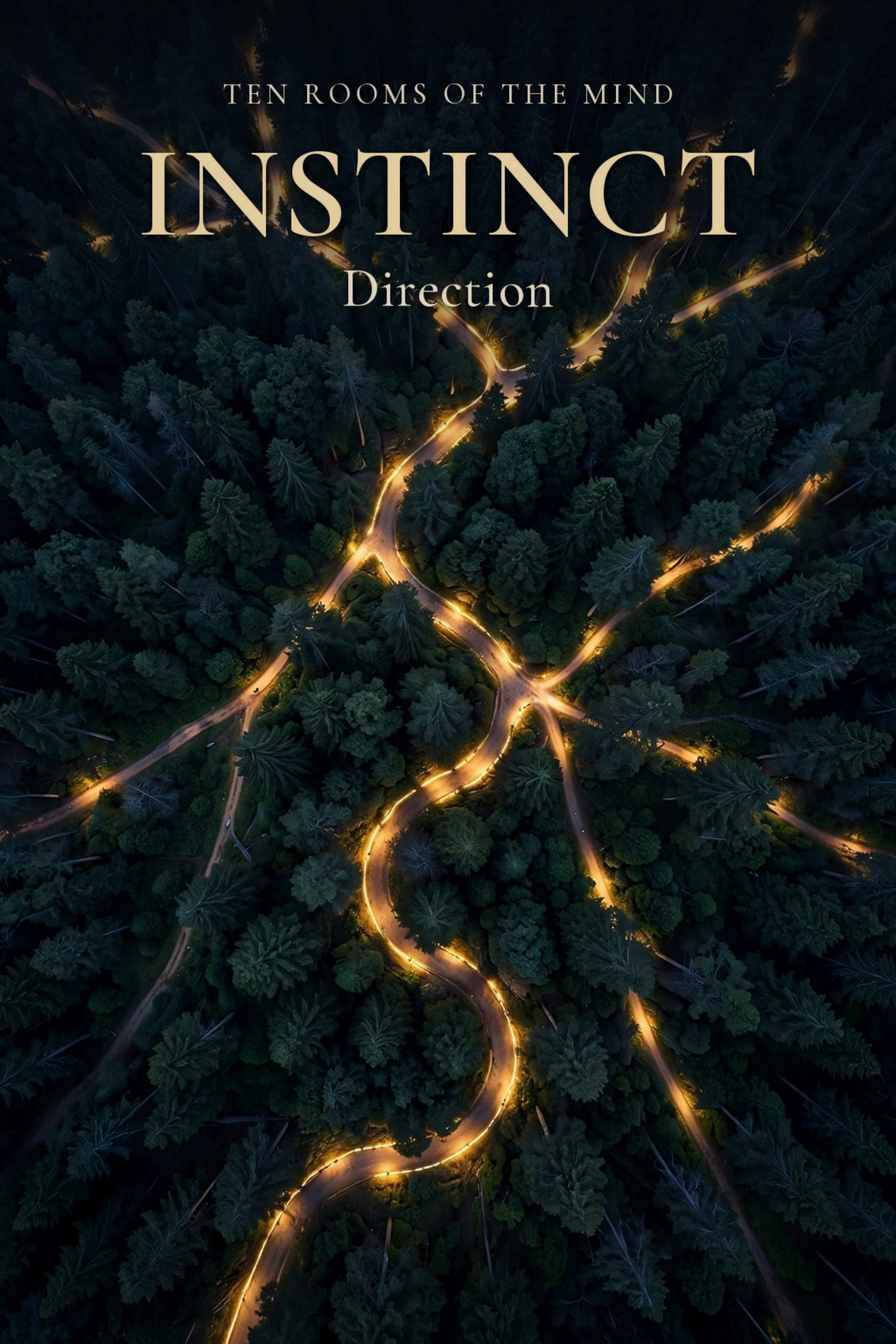


TEN ROOMS OF THE MIND

INSTINCT

Direction



जिलेट सहज-बुद्धि

दिशा

मन के दस कमरे

एक घर है जिसमें हममें से हर कोई रहता है, उसे कभी चुने बिना।

उसका कोई पता नहीं। वह किसी नक्शे पर नहीं मिलता। फिर भी हम उसे उन सब जगहों से बेहतर जानते हैं जहाँ हम सचमुच कभी रहे हैं। भीतर दस दरवाज़े हैं।

कुछ को हम हर दिन खोलते हैं, और हमें पता भी नहीं चलता।

कुछ पर हम ताला लगाए रखते हैं, यह जताते हुए कि उनका हमसे कोई वास्ता नहीं।

और फिर वे कमरे हैं जिन्हें हमने खुद नहीं बनाया, फिर भी न जाने कैसे उन्हें अपने भीतर लिए फिरते हैं। यह कोई सिद्धांत नहीं है।

यह मनोविज्ञान की कोई पोथी नहीं जो किसी ताल पर पड़ी धूल खा रही हो।

यह उस आदमी की आपबीती है जो इन दस कमरों से एक-एक करके गुज़रा, अक्सर यह जाने बिना कि वह कहाँ है, और जो अब, कंधों पर कुछ और बरस लिए, उन्हें ठीक वैसा ही बयान करने की कोशिश कर रहा है जैसा उसने उन्हें जिया।

दस दरवाज़े।

मैंने सब खोले।

कुछ जिज्ञासा से।

कुछ बेमन से।

कुछ तभी, जब लौटने के लिए बहुत देर हो चुकी थी।

अगर ये कमरे आपको जाने-पहचाने लगें, तो इसलिए नहीं कि वे मेरी कहानी कहते हैं।

इसलिए कि कहीं बहुत गहरे में वे आपकी कहानी भी कहते हैं।

फर्दिनांदो

सहज-बुद्धि — दिशा

जब भी वह घड़ी आती, मैं खुद को एक चौराहे पर खड़ा पाता।

मन चुप रहता।
कोई तर्क नहीं।
कोई हिसाब नहीं।
कोई रणनीति नहीं।
बस शरीर।
बाईं ओर हल्का-सा झुकाव।
उस पत्ते की तरह जो हवा के पीछे चल देता है, यह जाने बिना कि कहाँ गिरेगा।
मैंने जाना कि सहज-बुद्धि एक प्राचीन इलाके से आती है।
शब्दों से भी पुराने।
उन डरों से भी पुराने जिन्हें ढोना हमने सीख लिया।
वह पहले से वहाँ थी।
स्कूल से पहले।
तालीम से पहले।
चरित्र से पहले।
सहज-बुद्धि हमारे घर की पहली बाशिंदा है।
वह जो किराया भरती रहती है, तब भी जब हम भूल जाते हैं कि वह है।
वह बोलती नहीं।
इशारा करती है।
समझाती नहीं।
साथ चलती है।
मेरी ज़िंदगी बदल देने वाले कई फैसले इसी तरह जन्मे।
बिना सबूत के।
बिना गारंटी के।
बिना गवाहों के।
एक एहसास।

इससे ज़्यादा कुछ नहीं।

और फिर भी, पीछे मुड़कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि इतना काफ़ी था।

क्योंकि सहज-बुद्धि भविष्य नहीं जानती।

वह हमारा सच जानती है—वह सच जिस तक पहुँचने की कोशिश में तर्क बरसों लगा सकता है, जबकि शरीर उसे पहले से जानता था।

और जब हम सचमुच उसकी सुनते हैं, तो यह पूछना छोड़ देते हैं कि रास्ता कहाँ जाता है।

हम चलना शुरू कर देते हैं।

दिक्रक़त तब नहीं है जब सहज-बुद्धि ग़लत निकले।

दिक्रक़त तब है जब हम ऐसा जताएँ कि हमने उसे कभी सुना ही नहीं।

क्योंकि तब हम किसी और को ढूँढ़ने लगते हैं जो हमारी ज़िम्मेदारियाँ उठाए।

कोई माँ या बाप।

कोई शिक्षक।

कोई बॉस।

कोई सरकार।

कोई क्रिस्मत।

अगर हम वह सुनने से इनकार कर दें जो हम पहले से जानते हैं, तो दोष देने के लिए हमें हमेशा कोई और मिल जाएगा।

यही है इंसान।

लगभग हमेशा फ़ैसला करने के बजाय खुद से दगा करने को तैयार।

फर्दिनांदो